International Journal of Hindi Research
ISSN: 2455-2232, Impact Factor: RJIF 5.22
www.hindijournal.com
Volume 2; Issue 5; September 2016; Page No. 04-06

जातीय अस्मिता और इतिहास बोध

डॉ0 नेहा कल्याणी

हिन्दी व्याख्याता, गो.से. अर्थ वाणिज्य महाविद्यालय, नागपूर, महाराष्ट्र, भारत।

सारांश

मनुष्य को अपने व्यक्तित्व का बोध स्मृति के सहारे होता है। यदि वह मानव जीवन की मुख्य घटनाएँ भूल जाये, अपने महत्वपूर्ण अनुभव भूल जाएँ, परिवार व समाज के लोगों से अपना संबंध भूल जाए, तो उसका व्यक्तित्व नष्ट हो जायेगा। यही स्थिति जाति और राष्ट्र की है। अस्मिता बोध की पहली शर्त है–इतिहास बोध। हिन्दी भाषी जनता अपना इतिहास पहचाने बिना न स्वयं को पहचान सकती है, न राष्ट्र को। इस इतिहास में बहुत से उतार चढ़ाव है, बहुत सी सांस्कृतिक समृद्वि गर्व करने की वस्तु है, बहुत से रुझान सामाजिक विघटन की ओर ले जाने वाले है।

डॉ0 राम विलास शर्मा हिन्दी जातीय गौरव के प्रतिष्ठाता थे। उन्होंने भारतीय इतिहास की दूसरी सबसे बड़ी समस्या के रुप में जाति व्यवस्था पर समग्रता से विचार किया है। जाति व्यवस्था को वह पराधीनता, बाहरी आक्रमण, विषमता व पिछडेपन का प्रधान कारण मानते है। कुछ विद्वान राष्ट्र या जाति को कल्पना मात्र मानते है, पर यदि राष्ट्रया जाति नाम की कोई वस्तु (घटक) नही है तो मानी बात है कि अमेरीकी प्रभुत्व के विस्तार का मुकाबला करना किसी के लिए आवश्यक नही है। फिर तो भारत भी एक राष्ट्र नहीं है, विघटित हो जाने पर यह एक स्वाभाविक प्रक्रिया होगी।

भारत बहुजातीय राष्ट्र है, इस बहुजातीय राष्ट्र में एक जाति हिन्दी भी है। इसके मजबूत हुए बिना बहुजातीय राष्ट्रीयता का विकल्प हिन्दू राष्ट्र है। प्रत्येक जाति का सांस्कृतिक इतिहास होता है। हिन्दी जाति के सांस्कृतिक इतिहास में मुसलमानों का योगदान बहुत महत्वपूर्ण है। यदि हिन्दी राष्ट्र में जातीय चेतना सुदृढ होती, हिन्दी व उर्दू की बुनियादी एकता पर जोर दिया गया होता तो भारत का विभाजन ना होता, हिन्दी उर्दू का विवादित मसला ना होता। हिन्दी जातीयता राष्ट्रीयता की विरोधी नहीं, अपितु उसे पुष्ट करनेवाली है।

भारत में जातिप्रथा के खात्में के लिए जरुरी है वर्गसंघर्ष की चेतना के विकास पर जोर दिया जाए। सरकार ने आरक्षण का पैबंद लगाकर जातिप्रथा को कायम रखा। जाति प्रथा के उन्मूलन के लिए जरुरी है भूमि सुधार लागू किए जाये। शिक्षा के बगैर किसी भेदभाव में गाँवों में समान रुप से विकास हो शिक्षा के पाठ्यक्रमों को इस तरह बनाया जाय जिससे छात्रों में वर्गसंघर्ष की चेतना का विकास हो। अस्पृश्यता व भेदभाव को जीवन के विभिन्न स्तरों पर सचेत रुप से खत्म करने के लिए अभियान चलाया जाए।

मूल शब्द: जातीय अस्मिता, इतिहास, बहुजातीय, जातिप्रथा

प्रस्तावना

मनुष्य को अपने व्यक्तित्व का बोध स्मृति के सहारे होता है। यदि वह मानव जीवन की मुख्य घटनाएँ भूल जाये, अपने महत्वपूर्ण अनुभव भूल जाएँ, परिवार व समाज के लोगों से अपना संबंध भूल जाए, तो उसका व्यक्तित्व नष्ट हो जायेगा। यही स्थिति जाति और राष्ट्र की है। अस्मिता बोध की पहली शर्त है–इतिहास बोध। हिन्दी भाषी जनता अपना इतिहास पहचाने बिना न स्वयं को पहचान सकती है, न राष्ट्र को। इस इतिहास में बहुत से उतार चढ़ाव है, बहुत सी सांस्कृतिक समृद्वि गर्व करने की वस्तु है, बहुत से रुझान सामाजिक विघटन की ओर ले जाने वाले है।

डॉ0 रामविलास शर्मा लिखते है कि– ''आज भारत जैसा है, वह पिछले इतिहास की देन है। इस इतिहास का निर्माण हमने किया है, कभी सचेत रुप से कभी अचेत रुप से।'' [1] डॉ. शर्मा इतिहास के सांस्कृतिक पक्ष की अवेहलना उचित नहीं समझते। वे कहते है कि – ''सामान्यतः सामाजिक इतिहास को सांस्कृतिक इतिहास से अलग रखा जाता है। हमारी संस्कृति हमारे सामाजिक जीवन को निरन्तर प्रभावित करती है। हमारा इतिहास बोध हमारी संस्कृति का महत्वपूर्ण अंग है।'' [2]

अतीत की गलतियों से सबक लेकर मनुष्य का वर्तमान सुधरता है, भविष्य सँवरता है। प्राचीन संस्कृति और इतिहास पर गर्व करना तो दूर की बात है, उसका नाम लेने से भी कुछ लोग अपनी हीनता का अनुभव करते हैं। इन परिस्थितियों से दुःखी डॉ. शर्मा ने भारतीय इतिहास की विशद व्याख्या की है। विशेष रुप से सन् 1857 की लड़ाई से उन्हें गहरा, मजबूत, स्वस्थ और भावुक लगाव है।

डॉ. राम विलास शर्मा हिन्दी जातीय गौरव के प्रतिष्ठाता थे। उन्होंने भारतीय इतिहास की दूसरी सबसे बड़ी समस्या के रुप में जाति व्यवस्था पर समग्रता से विचार किया है। जाति व्यवस्था को वह पराधीनता, बाहरी आक्रमण, विषमता व पिछडेपन का प्रधान कारण मानते है। कुछ विद्वान राष्ट्र या जाति को कल्पना मात्र मानते है, पर यदि राष्ट्र या जाति नाम की कोई वस्तु (घटक) नही है तो मानी बात है कि अमेरीकी प्रभुत्व के विस्तार का मुकाबला करना किसी के लिए आवश्यक नही है. फिर तो भारत भी एक राष्ट्र नहीं है, विघटित हो जाने पर यह एक स्वाभाविक प्रक्रिया होगी।

सामाजिक विकास की प्रक्रिया में एक खास मंजिल तक पहुँचने के बाद जाति का गठन होता है। यह जाति किसी राज्य के रुप में संगठित होती है। राज्य की आवश्यकता होती है, अपनी आर्थिक, राजनैतिक व सांस्कृतिक कारवाई संगठित करने के लिए। यदि राज्य के रुप में संगठित ना हो तो उसका आर्थिक विकास बिखर जायेगा। उसकी राजनैतिक चेतना कुंद पड जायेगी। वह विदेशी आक्रमणकारियों का मुकाबला न कर पायेगी।

भारत बहुजातीय राष्ट्र है, इस बहुजातीय राष्ट्र में एक जाति हिन्दी भी है। इसके मजबूत हुए बिना बहुजातीय राष्ट्रीयता का विकल्प हिन्दू राष्ट्र है। प्रत्येक जाति का सांस्कृतिक इतिहास होता है। हिन्दी जाति के सांस्कृतिक इतिहास में मुसलमानों का योगदान बहुत महत्वपूर्ण है। यदि हिन्दी राष्ट्र में जातीय चेतना सुदृढ होती,

हिन्दी व उर्दू की बुनियादी एकता पर जोर दिया गया होता तो भारत का विभाजन ना होता, हिन्दी उर्दू का विवादित मसला ना होता। हिन्दी जातीयता राष्ट्रीयता की विरोधी नहीं, अपितु उसे पुष्ट करनेवाली है।

भारत का इतिहास उसकी जातियों का इतिहास है। बहुजातीय राष्ट्र का इतिहास हिन्दुओं या मुसलमानों का इतिहास नहीं, बल्कि हिन्दी जाति का इतिहास है। जाति व्यवस्था की मुख्य विशेषता है– ''जो पास है उसे बचाओं और जो नहीं है उसे दूसरे से हथिया लो।'' [3] रामविलास शर्मा ने प्रश्न उठाया है कि भारत में विदेशी हमलावर इतनी तेजी से जीत कैसे हासिल कर पाए ओर उन्हें कहीं पर भी पराजय का मुँह क्यों नही देखना पड़ा? इस संदर्भ में परमात्माशरण को उद्धृत करते हुए लिखा है कि– ''सबसे पहला कारण जाति प्रथा है। परिणामतः भारतीय समाज अलग–थलग टुकडों में बंटा हुआ था। इनमें अल्पसंख्यक जनता को बहुत से नागरिक अधिकारों से वंचित करके अपने विशेशाधिकारों, अपने निहित स्वार्थों की रक्षा करते थे। विशेषाधिकारी वर्गो के प्रति कर्तव्य व कार्यो का भार उन पर लादा गया था। इससे भारतीय जनता में अर्थात उच्च वर्गो में झूठा अभिमान पैदा हुआ, जिसके बारे में अलबरुनी ने लिखा था, हिन्दू समझते है कि उनके जैसे राजा ओर कहीं नहीं है, उनके जैसा विज्ञान और कहीं नहीं है...। अगर वे बाहर निकल कर यात्रा करे और दूसरी जातियों से मिले तो वे बहुत जल्दी अपने विचार बदल देंगे। अलबरुनी ने यह भी लक्ष्य किया था कि वर्तमान पीढ़ी की तरह उनके पूर्वज इस तरह के संकुचित विचारों के नहीं है। यह एकांत श्रेष्ठता की भावना बौद्विक धोखाधड़ी की प्रक्रिया द्वारा निर्मित हुई थी। और उसके द्वारा सुरक्षित रखी गई थी। उस काल का साहित्य भी इसी उद्देश्य के लिए इस्तेमाल किया गया था और आम जनता से कहा जाता था कि वह आंख मूंदकर शास्त्रों का अनुसरण करे। उनमें वर्णित बातों पर अविश्वास अक्षम्य अपराध माना जाता था।

जनता के बहुसंख्यक भाग को ऐसी अपमानजनक स्थिति मे रखा गया था कि वह देशव्यापी संकट और संबंधित समस्याओं के प्रति उदासीन हो गया था। एक धार्मिक, सामाजिक उत्पीड़न द्वारा जनता की आवाज को दबाकर उसे खामोश कर दिया गया था। परमात्मा शरण कहते है कि राजपूत राजा निरन्तर पारस्परिक संघर्षो में फँसे हुए एक दूसरे को शक्तिहीन बना रहे थे। उनमें विशद राष्ट्रीय दृष्टिकोण व देश भक्ति की भावना का अभाव पैदा हो गया। राष्ट्रीय चेतना, देशप्रेम, स्वाधीनता पर गर्व ये सब सामाजिक रुढ़ियों व कर्मकाण्ड के बोझ के नीचे कुचल दिए गए थे।'' [4] राम विलास शर्मा की मान्यता थी कि– ''जो लोग भी जाति प्रथा जैसे सामन्ती व्यवस्था के अवशेष समाप्त करना चाहते हैं, उन्हें सबसे पहले यह देखना चाहिए कि भूस्वामित्व के आधार में परिवर्तन हुआ है या नहीं।'' उनका मानना था कि वर्ण व्यवस्था का अध्ययन करते हुए केवल मनुस्मृति पर निर्भर रहना ठीक नहीं है, क्योंकि इसके अधिकांश नियम उत्तर भारत, विशेष रुप से हिन्दी प्रदेश के जनपदों के समाजों के लिए बनाए गए थे।'' [5]

वास्तविकता यह है कि अंग्रेजों के आने के बाद जाति व्यवस्था और भी ज्यादा मजबुत हुई। अंग्रेजों ने अपनी सत्ता के विस्तार के लिए तमाम किस्म की पिछड़ी ताकतों व सामाजिक संरचनाओं के साथ समझौता किया, उन्हें बनाए रखा। जातीय चेतना के विकास के लिए जरुरी है कि हमारा समाज साम्प्रदायिक व जातिवादी चेतना से मुक्त हो।

गाँधीजी के अस्पृश्यता विरोधी दृष्टिकोण का विश्लेषण करते हुए रामविलास शर्मा ने लिखा है कि– ''अछूतों की दशा सुधारने के लिए दो चीजें आवश्यक थी। पहली देश का उद्योगीकरण, जिससे लोगों को नए काम धंधे मिल सके। दूसरी, बेजमीन खेत–मजदूरों को जमीन देना, इसके लिए जमीन का नए सिरे से बंटवारा आवश्यक था। यह तभी हो सकता था जब जमींदार और राजाओं के विशेषाधिकार खत्म किए जाएं।'' [6] किन्तु गॉधीजी तमाम सद्इच्छाओं के बावजूद ऐसा नही करवा सके; क्योंकि कांग्रेस के नेतृत्व में जमींदारों के खिलाफ संघर्ष चलाने की शक्ति नही थी। दूसरी बात यह है कि हमारे शासकों के पास शहरों के आधुनिकीकरण की कोई समझ नहीं थी। तीसरी बात यह है कि औपनिवेशिक युग में उद्योगीकरण की बजाए निरुद्योगीकरण हुआ अर्थात् बेरोजगारी में वृद्धि।

रामविलास शर्मा ने वर्णव्यवस्था को ऐतिहासिक दृष्टिकोण से ''मार्क्स और पिछडे हुए समाज' (1986) में विस्तार से विश्लेषित करते हुए लिखा कि भारतीय वर्ण व्यवस्था का विश्लेषण करते हुए यूरोपीय सामन्ती समाज की विशेषताओं को ध्यान में रखना चाहिए। एंगेल्स को उद्धत करते हुए उन्होंने लिखा है कि ''सामन्ती व्यवस्था कुछ व्यक्तियों को विशेषाधिकार देती है, समाज की पूरी श्रेणियों ;तंदोद्ध और स्थानीय संघो को विशेषाधिकार देती है। उसके सामाजिक संगठन का ढांचा ऐसा है कि अधीनता के बंधन वंशगत होते हैं।'' [8] उन्होंने जाति की विशेषताएं बताते हुए लिखा है कि ''जाति की तीन विशेषताएं होती है। पहली बिरादरी के सदस्य एक ही पेशे में होते है। दूसरी पेशा वंशगत होता है। तीसरी बिरादरी के सदस्य आपस में संबंधी होते है।'' [9] कालान्तर में वर्ण व्यवस्था का विघटन हुआ। मिश्रित जातियों का उदय हुआ। बदलते आर्थिक संबंधों व व्यापारिक पूंजीवाद के दौर में विभिन्न जनपदों में तेजी से आदान प्रदान बढने से जातिप्रथा के बंधन ढीले पड़े। नवीं व 16–17 वीं शती में कबीर, सूरदास, नामदेव जैसे अनेक निम्न वर्ण के संत हुए जिनका उच्च वर्ण के लोग सम्मान करते थे।

किन्तु कालान्तर में जातिप्रथा इतनी कठोर हुई कि मंदिरों में निम्न जाति के प्रवेश पर पाबंदी लग गई। अंग्रेजों ने सरकारी नौकरी के लिए जाति का उल्लेख आवश्यक माना। अंग्रेजी राज में जातिप्रथा की मजबूती का कारण यह भी है कि भारत में व्यापारिक प्रगति के साथ नए पूंजीवादी संबंध पनप रहे थे। अंग्रेजों ने सामन्तवाद का खात्मा नहीं किया अपितु नए सामन्तवाद का निर्माण किया जो अधिक प्रतिक्रियावादी था। उन्होंने निरुद्योगीकरण किया। आरक्षण की राजनीति ने जातिप्रथा की बेडियों को समाज में और अधिक मजबूत प्रदान की।

भारत में जातिप्रथा के खात्में के लिए जरुरी है वर्गसंघर्ष की चेतना के विकास पर जोर दिया जाए। सरकार ने आरक्षण का पैबंद लगाकर जातिप्रथा को कायम रखा। जाति प्रथा के उन्मूलन के लिए जरुरी है भूमि सुधार लागू किए जाये। शिक्षा के बगैर किसी भेदभाव में गाँवों में समान रुप से विकास हो शिक्षा के पाठ्यक्रमों को इस तरह बनाया जाय जिससे छात्रों में वर्गसंघर्ष की चेतना का विकास हो। अस्पृश्यता व भेदभाव को जीवन के विभिन्न स्तरों पर सचेत रुप से खत्म करने के लिए अभियान चलाया जाए।

उपसंहार

इतिहास के कंकाल में नवजीवन व प्राणद चेतना का अपनी अनन्य प्रतिभा से संचार करने वाले श्री शर्मा ने अतीत की स्थूल व दुर्भेद्य तहों मे दबी हुई भारतीय संस्कृति, हिन्दी जाति, अतीत गौरव, नवजागरण व राष्ट्रीय भावना को हिन्दी साहित्य से जोड़ा। उन्होंने मार्क्सवाद प्रगतिशील व प्रतिक्रियावादी तत्वों की पहचान कराने की एक नई दृष्टि दी।

डॉ0 शर्मा की आलोचना यात्रा में हमें उनका एक विचारात्मक संघर्ष दिखाई देता है, जो कुछ उनकी मान्यताओं के अनुकूल है उसे वे स्वीकारते हैं और प्रतिकूल पर निर्मम प्रहार करते है। यत्र–तत्र उनकी आक्रमक मुद्रा मासित होती हैं। उन्होंने इतिहास के माध्यम से हिन्दी जाति को अस्मिता बांध से जोड़ा।

सन्दर्भ

1. भारतीय संस्कृति और हिन्दी प्रदेश, पृष्ठ 608, खण्ड–2
2. भारतीय संस्कृति और हिन्दी प्रदेश, प्रथम संस्करण, 1999, पृश्ठ–5, खण्ड–1
3. भारतीय संस्कृति और हिन्दी प्रदेश, खण्ड–1, 1999, पृश्ठ–591
4. भारतीय संस्कृति और हिन्दी प्रदेश, पृष्ठ 21–22
5. भारतीय संस्कृति और हिन्दी प्रदेश, पृष्ठ 591
6. साम्य–21, संपादक विजय गुप्त
7. शर्मा रामविलास, गाँधी, आम्बेडकर, लोहिया व भारतीय इतिहास की समस्याएँ, पृष्ठ 382–314
8. एंगेल्स फ्रेडरिक, ऐन्टी ड्यूहरिंग, पाद टिप्पणी–2, मास्को, 1975, पृष्ठ–306
9. भारतीय इतिहास व ऐतिहासिक भौतिकवाद, दिल्ली विश्वविद्यालय, 1992 पृष्ठ–37–38